शब्दों से परे

आमुख

डॉ. राजेश्वर सहाय त्रिपाठी

राजस्थानी कोकिला के मातृप्रदेश नवलगढ़ में आविर्भूत, विद्यापति की काकली से गुंजायमान बिहार के गया नगर में बालशिक्षा-प्राप्त, त्रैलोक्य-न्यारी पावन गंगा से लाड़ित विश्वनाथपुरी काशी से स्नातकीय दीक्षा-गृहीत गुलाब को 'हास्यरस-सम्राट' 'बेढब बनारसी' का काव्य-वात्सल्य, उनकी विश्वसनीयता से सहज रूप में ही उपलब्ध होता रहा। 'लक्ष्मी' की गोद में लालित-पालित बालक पर, उसके रूप पर, वीणापाणि से बिना व्यामोहित हुए न रहा गया। ज्यों-ज्यों वयवृद्धि में सरस्वती के प्यार ने श्रीवृद्धि करना आरम्भ किया, लक्ष्मी की उदासीनता बढ़ती गयी, पर स्नेह पर संबलित युवक, उमंगों के सहारे जीवन-संघर्ष में लग गया। पंद्रह वर्षीय छात्र ने छायावादी रीति पर प्रथम संग्रह 'कविता' का प्रकाशन कराया। 'चाँदनी' 'गाँधी-भारती, 'मेरे भारत, मेरे स्वदेश', गीतों के संग्रह हिन्दी-जगत ने देखे। तरुण कलाकार की देशभक्ति इन रचनाओं से छलक रही थी, साथ ही, उनमें भाव-भरित काव्यात्मा के अद्‌भुत् दर्शन मिल रहे थे।

'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता भरत मुनि ने नाटक को काव्य का प्रतिरूप ही कहा है। 'अभिनव भरत' आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी ने भी 'अभिनव नाट्यशास्त्र' में रमणीय वृत्ति प्रधान होने से 'रमणीयार्थम् (वाक्यम्) काव्यम्' का समर्थन किया है। कवि की आंतरिक रमणीयता 'बलि-निर्वास', 'भूल', तथा 'राजराजेश्वर अशोक' संज्ञक नाटकों से अभिनेयतासहित प्रस्फुटित हुई है। लोकमंगल की उदात्त भावनाओं से काव्यग्रंथ आलोकित हैं। प्रणय-बहुल वय के हिंडोले पर झूलनेवाले मन ने 'कच-देवयानी' खंडकाव्य प्रस्तुत किया जो सुरासुर-संग्राम की बिम्बविधायिनी ओजमयी रचना

है । 'कच-देवयानी' रसराज श्रृंगार का सफल आलंबन है जो परिस्थिति-विभावों के परिप्रेक्ष्य में, रसमयी धारा के रूप में फूट पड़ा है । प्रत्येक प्राणी की मानसिक क्रियाओं में देवासुर संग्राम उसके उरस्थ भावनानुरूप, ज्वार-भाटा-सा आता-जाता रहता है । मनोवैज्ञानिक स्थितियों के इस पंडित (पण्डा यस्य बुद्धिः सैव पंडितः) ने 'अहल्या' को अवतरित किया, जिसका समादर अब उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान ने २१००/- पुरस्कार देकर १९८१ में किया । इसके पूर्व कवि को उत्तर प्रदेश शासन से 'उषा' पर १९६७ में, 'रूप की धूप' पर १९७२ में, 'सौ गुलाब खिले' (हिन्दी ग़ज़ल) पर १९७५ में पुरस्कृत होने का गौरव मिला । 'तुलसी-सूर-बिहारी' के हृदय-प्रदेश ने इस वाणी के वरद पूत को हृदय खोलकर अपना लिया, जबकि 'विद्यापति'-प्रदेश अब तक जड़ीभूत ही पड़ा है ।

हाँ, 'कच-देवयानी' के पश्चात् आचार्य दण्डिन् के निर्धारित निकष पर गुलाब कवि से महाकवि हो गये, जब इनकी लेखनी ने 'उषा' महाकाव्य की रचना में प्रौढ़ता प्राप्त कर ली । महाकवि 'प्रसाद' की कामायनी की 'उषा' "उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी-सी उदित हुई, इधर पराजित कालरात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई" स्वर्णिम प्रकाश-राशि लेकर आयी थी, परन्तु काल्पनिक कथानक पर लिखे महाकाव्य के रूप में गुलाब की **'उषा'** सौंदर्य की अपूर्व छविसृष्टि करने में समर्थ हो गयी । कामायनी की भाँति मैं इसे भी विश्व-महाकाव्य के रूप में देखता हूँ । किसी देश के मानव-मन तथा हृदय सम परिस्थितियों में किन संकल्प-विकल्पों से पार होते हैं और वे कैसे आत्म-परिष्कार में सफल होते हैं, यह इस महाकाव्य में रसज्ञ को अवश्य उपलब्ध होगा, साथ ही सौन्दर्यानुभूति तथा 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' का भी पूर्ण आनंद मिलेगा । 'रूप की धूप', पँखुरियाँ गुलाब की तथा 'सौ गुलाब खिले', रुबाइयों और ग़ज़लों के ग्रन्थ हैं । 'ध्वनिर्काव्यस्यात्मा' के मंत्रोच्चारी आचार्य अभिनवगुप्त ने व्यंग्य को श्रेष्ठतम काव्य की संज्ञा दी, पर उनकी ही तुला पर हिन्दी की द्वितीय शैली उर्दू में चुभती फबती ढूँढनेवाले वैराग्य का अनुभव करने लगे

थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो इन फब्तियों को मात्र कलापक्ष कहकर इन्हें काव्य की निम्न कोटि ही में रखा क्योंकि न तो इनमें व्यंग्य के दर्शन हुए और न रसानुभव के नाम पर एक बूँद ही मिली । मंचीय कविताओं की वाहवाही तक ही इनके भाव भी जलबुल्लों की भाँति आये और उसी क्षण तिरोहित भी हो चले । रीति-कविरत्न बिहारी के

तंत्री-नाद, कवित्त रस, सरस राग, रति-रंग ।
अनबूड़े बूड़े, तरे, जे बूड़े सब अंग ।।

में ऐसी रमणीयता है, जिसमें जितना भी रमण किया जाए, आम्र-गुठली की भाँति उसमें अंत तक रसवृद्धि ही होती जायेगी । गुलाब की रुबाइयों एवं ग़ज़लों पर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'मानव', आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा आचार्य श्री विश्वनाथ सिंह ने श्लाघनीय विचार व्यक्त किये हैं । किन्तु खेद है कि विद्वानों ने 'शैली' को ही महत्त्व दिया । मेरा स्पष्ट अभिमत है कि यदि गुलाब की ग़ज़लों तथा रुबाइयों में शैली ही की प्रधानता होती तो उन्हें मैं उत्तम कविता की कोटि में न गिनता । एक-एक ग़ज़ल भाव तथा रस से सिक्त है । भारतीय काव्य में रस-सिद्धि ही उत्तम मानी गयी है । मैं इस दृष्टि से गुलाब को ग़ज़ल शैली में भारतीय संस्कृति तथा वाङ्मय-रस के गायक के रूप में अंगीकार करता हूँ और उन्हें, हिन्दी को उसके परिवेश में नई विधा प्रदान करने के साथ, आत्मवान नया रस देने का जनक स्वीकारता हूँ । यह वह रस है जैसा बिहारी के उपर्युक्त दोहे में है । 'गेयता' होने से महाकवि गुलाब इसमें सबसे अग्रिम पंक्तियों में आ जाते हैं । सिद्धांत-प्रेमी कवि के 'आलोकवृत्त (बापू पर वृत्तान्तकाव्य) को स्वदेश-भक्ति तथा स्व-संस्कृति को आलोकित करने के निमित्त उत्तर-प्रदेश शासन ने इंटर के पाठ्यक्रम में निर्धारित कर अपने पावन कर्त्तव्य का ही पालन किया । गुलाब की अन्य पुस्तकें पूर्णतया या आंशिक रूप से अनेक विश्वविद्यालयों में चयनित हैं ।

जिस प्रकार सम्राट हुमायूँ को परास्त करने पर भी उससे युद्धरत सम्राट शेरशाह सूरी राष्ट्रोपयोगी राजपथ-निर्माण में पाँच वर्षों ही की अल्पावधि में पूर्णतया सफल रहा, उसी प्रकार

पारिवारिक तथा राजनीतिक झंझावातों के घात-प्रतिघातों में संघर्षरत गुलाब ने मुक्तक से लेकर महाकाव्य-रचना में उत्तीर्णता प्राप्त की। पर, मन और शरीर की गति-सीमा होती है। उनका 'शब्दों से परे' एक मुक्तक ग्रन्थ है, जिसकी विवेचना आगे संक्षेप में की जायगी।

छान्दोग्य उपनिषद् में एक मंत्र है ---

आकाशात् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः
अद् भ्यः पृथ्वी, पृथ्वीर्भिः वनस्पतयः आदि

इसकी विवेचना से स्पष्ट है कि अव्यक्त गुणातीत सूक्ष्मतम तत्त्व से पहले शून्य = आकाश आविर्भूत हुआ। 'शब्दः गुणमाकाशस्य' के अनुसार आकाश का मात्र गुण 'शब्द' है। आकाश से वायु उत्पन्न हुई, जिसमें शब्द के अतिरिक्त अपना विशेष गुण 'स्पर्श' है। वायु से अग्नि आयी, जिसमें 'शब्द-स्पर्श' के साथ 'रूप' (तेज) विशष गुण की सृष्टि हुई। अग्नि से आपस् (जल) पैदा हुआ, जिसमें 'शब्द-स्पर्श-रूप' के अलावा 'रस' गुण उद्भुत हुआ और अन्तोगत्वा जल से 'पृथ्वी' उत्पन्न हुई जिसमें इसका अपना 'गन्ध' गुण-विशेष पैदा हुआ और पृथ्वी में आकाश, वायु, अग्नि, जल सबके समाहित रहने से इसमें पञ्च तन्मात्राएँ - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध स्वयमेव विद्यमान हो गयी। सन्त तुलसी ने ठीक ही कहा ---

क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा। पञ्चरचित यह अधम सरीरा॥

छान्दोग्य की वाणी में क्रम है, पर तुलसी में अक्रम। किन्तु भाव में अंतर नहीं है। तात्पर्य यह है कि पृथ्वी का कण अन्य चारों से स्थूल है और उनके सूक्ष्म गुणों को भी अंतर्भूत करता है। इसमें पाँचों मात्राएँ (गुणसूक्ष्मता) हैं। जल में चार हैं, पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य तीन तत्त्वों के गुण वर्त्तमान हैं और इसी उपक्रम से आकाश में एक गुण 'शब्द' है, फिर आकाश के विवेचन की गुत्थी शाश्वत काल से अनसुलझी चली आ रही है। प्रतिक्रमिक विवेचना की जाय कि यदि पाँच के ऊपर चार और चार के पश्चात् तीन गुणीय तत्त्व हैं, और तीन के अनंतर द्विगुणीय तथा यदि दो गुणीय तत्त्व वायु के बाद एक गुणीय तत्त्व आकाश है (जिसका मात्र गुण 'शब्द' है) तो इसी तर्क के आधार

पर एक गुणीय तत्त्व के पश्चात् क्यों निर्गुण तत्त्व न होगा? जिस प्रकार पृथ्वी में पाँचों तन्मात्राएँ हैं उसी प्रकार इन पञ्च-तन्मात्राओं --- शब्द,स्पर्श, रूप, रस, गंध में निर्गुण तत्त्व क्यों न समाहित होगा? दूसरे शब्दों में 'शब्द' से परे निर्गुण तत्त्व है, जो अरूप, अशब्द, अनिर्वचनीय तथा अज होने के साथ-साथ सभी में है और अंत में सबको समाहित किये है तथा सब में समाहित है।

इसी आधार पर शास्त्रों में 'यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे' पद से 'शब्दों से परे' को निरूपित किया गया। संत कवियों ने इसे अनेक रूपों में प्रतिपादित किया है। 'सियाराममय सब जग जानी, करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी' में इस तत्त्व की सर्वव्यापकता बतायी गयी। 'गो, गोचर जहँ लगि मन जाई, सो सब माया जानहु भाई।' इन्द्रिय से भोग्य या अनुभवजन्य तत्त्व माया, प्रकृति के हैं, इन्द्रियातीत तत्त्व ही शब्दों से परे हैं।

भक्त कवि-शिरोरत्न सूरदास ने कहा है ---

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन - बाणी को अगम, अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुण-जाति, जुगुति बिन, निरालंब मन चक्रित धावै।
सब विधि सुगम विचारहिं ताँते सूर सगुन लीलापद गावै।

निर्गुण तत्त्व की सर्वव्यापक महत् सत्ता की स्वीकृति देते हुए सूर ने सगुणोपासना, मन को प्रारम्भ में नियंत्रित करने हेतु, प्रतिपादित की। मन को आह्लाद चाहिए। भक्ति विषयक 'रति' की पूर्ति हेतु उन्होंने 'लीला' के पदों को गाने का संकल्प लिया। सार्वजनीन मन भी लीलानुभूति से भगवान के प्रति आकृष्ट होगा और शनैः-शनैः मन को तल्लीन करके आत्मानंद पायेगा। भक्तिरस के इस परिपाक से हृदय को जो सौष्ठव प्राप्त होगा वह भी गूँगे के गुड़ की मिठास-सा ही होगा, जिसका वह अनुभूति-सुख तो पा लेगा, पर जिसकी अभिव्यंजना न कर सकेगा।

'कामायनी' में प्रलय-लीला के जलप्लावन से टकराते 'मनु' हिमगिरि की एक चोटी पर शरण पा जाते हैं और अनुभव करते हैं :

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह ।
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय - प्रवाह ।
नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन ।
एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन ।

जड़-चेतन, तरलता-सघनता, उस महत् तत्त्व की ही विभिन्न प्रक्रियाओं के प्रतिफल मात्र हैं । उस तत्त्व की अस्तित्व-सूक्ष्मता में अंतर नहीं । इसे अपनी शैली में मलिक मुहम्मद जायसी ने --- प्रत्येक वस्तु तथा प्रकृति के भाग में जो कुछ सुन्दर है वह उसी तत्त्व का ही बिम्ब मात्र है --- कहकर 'उस नूर' को आत्म-सात् करने का मार्ग प्रबंध-काव्य 'पद्मावत' के माध्यम से प्रशस्त किया है ।

'रस्यते इति रसः', रस आनंद की अनुभूति है । हास्य, श्रृंगार, वीर आदि उपादानों में विभिन्न परिस्थितियों में जन-मानस रमण कर आनंद तो पाता है, पर करुणा एवं नैराश्य में यह आनंद क्योंकर उपलब्ध होता है ! इसी से आदिकाल में शास्त्रकारों ने इन्हें रस ही नहीं माना । परन्तु महाकवि भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' के पश्चात् तो 'करुण रस' राजा के रूप में अंगीकृत हुआ । वैसे भी देखा जाता है कि करुण काव्य या नाटक के देखने की अवस्था में जब मन उसे आपबीती-सी अनुभव करने लगता है तब वह किसी की अवरोध-मुद्रा को सह नहीं सकता, चाहे वह अबोध बालक की रुलाई ही क्यों न हो। इसी प्रकार सांसारिक सुख-दुःख, उत्थान-पतन, सद्-व्यवहार-दुर्व्यवहार, से झकझोरे जाने पर नैराश्य जहाँ एक स्थिति में विप्रलंभ की सृष्टि करता है वहीं जीवन के प्रति उदासीनता भी अन्य स्थिति में पैदा करता है । उस स्थिति में भी जब भोक्ता को कहीं से उसके रसोपभोग में बाधा होती है तो उसे बहुत बुरा लगता है । यही रसत्व के आनंद की सही पहचान है ।

जब कवि की अनुभूति इतनी सहजता-सम्पन्न होती है कि वह उसकी अनुभूति मात्र नहीं रह जाती, अपितु पाठक या श्रोता उसे आपबीती-सी अनुभव करने लगता है तब उसे ही रस का

साधारणीकरण कहते हैं । यही साधारणीकरण जिस काव्य में या गद्य-ग्रन्थ में जितनी बहुलता से पाया जाता है, उसी के मात्रानुसार उसमें रस का परिपाक होता है जो यदा-कदा रसत्व को नहीं पहुँचता, अपितु 'भाव' तक ही सीमित हो जाता है । साधारणीकरण के कारण ही काव्य ब्रह्मानंद-सहोदर की संज्ञा से अभिहित है । काव्य की यह प्रक्रिया सहज होती है और बिना गहरी अनुभूति के फलीभूत नहीं होती है । सूर-तुलसी, कबीर या जायसी संत तो थे ही, किन्तु उससे भी अधिक वे अनुभूति-प्रधान कवि थे । संघर्षमय जीवन-द्रष्टा गुलाब में तरुणावस्था से लेकर अद्यपर्यन्त नानाविधि की अनुभूतियाँ आलोड़ित हैं जिनका उनके काव्य-काल से पूरा मेल है ।

छप्पन वर्षीय 'गुलाब' ने उन्हें विराम की ओर मोड़ दिया । गृहस्थ होता हुआ भी कवि गृहस्थ नहीं रह गया । 'शब्दों से परे' में इसका परिपाक हम सरलता से पा सकते हैं । यह दर्शन-ग्रन्थ नहीं है, पर दार्शनिक सिद्धांतों की स्वानुभूति कवि को नाना प्रकार से हो चुकी है । इसकी अभिव्यंजना भाव-विभोर होकर की गयी है । महाकवि की निम्न पंक्तियों में उस अव्यक्त से तादात्म्य स्थापित करने का उद्देश्य अवलोकन करें ----

इसलिए मैं व्यक्त से अव्यक्त होना चाहता हूँ
क्योंकि मेरे व्यक्त की सीमा नयन है
क्योंकि मेरे व्यक्त की सीमा गगन है
क्योंकि मेरे व्यक्त की सीमा मरण है
इसलिए मैं अमृत से संपृक्त होना चाहता हूँ
क्योंकि मेरे व्यक्त की सीमा प्रकृति है
क्योंकि मेरे व्यक्त की सीमा नियति है
क्योंकि मेरे व्यक्त की सीमा अगति है
इसलिए मैं काल से अविभक्त होना चाहता हूँ
क्योंकि मेरा व्यक्त मुझको डँस रहा है
क्योंकि मेरा व्यक्त मुझको कस रहा है
क्योंकि मेरा व्यक्त मुझको ग्रस रहा है
इसलिए मैं परिधि से परित्यक्त होना चाहता हूँ
इसलिए मैं व्यक्त से अव्यक्त होना चाहता हूँ

इन्हीं प्रकार के भावोद्गारों का सहज दर्शन पाठक को 'शब्दों से परे' में अनेक स्थलों पर मिलेगा, जहाँ वह मूकानुभूति से अपने जीवन में इन्हें उतारने लगेगा। गुलाबजी की इस दिशा में होनेवाली मार्मिक अनुभूतियाँ अनूठी हैं। यथा ---

१. यह भी बीत जायगा, सब कुछ बीत जायगा।
कल तक जो था नया
आज मिट गया, उड़ गया . . .

२. मैं जग को अन्तर्हित कर लूँ
निज को निखिल भुवन में भर लूँ
प्रश्न स्वयं, मैं ही उत्तर हूँ
अपने अकथ, अलौकिक क्षण के।
कैसे पार उड़ूँ जीवन के ?

३. मैंने यह साँप क्यों पकड़ा है
कि जिसने उलटकर मुझको ही सिर से पाँवों तक जकड़ा है?

४. कितने शीघ्र आ गए हैं हम नदी के किनारे !

५. हम सब मृत्यु की सजा पाए हुए कैदी हैं
हमें वध-स्थान की ओर ले जाया जा रहा है
धीरे, धीरे, धीरे।

६. डूब रहा हूँ मैं महाशून्य के अँधेरे में . . .

७. जीवन तो ताशों का घर है, बनते-बनते मिटता जाता

ऐसी, जीवन को समाज की ओर ले जानेवाली, अनेक पंक्तियों से पूरी पुस्तक भरी पड़ी है ---

१. करुणामय ! तेरी करुणा का भार मधुर झेलूँ कैसे !
चार हाथ से तू देता, मैं दो हाथों से लूँ कैसे !

२. अगणित पावस-वसंत
व्योम-भूमि-दिग् दिगंत
एक रंग, आदि-अंत,
बिछुड़े, फिर हुए संग
रंग-रंग

३. मेरे सपने आज मुझे ही दिखा रहे हैं आँख, देखो

४. पल - पल, प्रहर - प्रहर
टूटती ही जाती हर लहर
५. दुःख के नील घनों में सुख की विद्युत्-सी रेखा है।

जीवन संघर्षमय है। माया से जकडे रहने पर भी, लड़ते चलो, हँसते चलो। कवि का स्वर मुखर पड़ा ---

१. 'नाव अब बच न सकेगी, प्रयत्न निष्फल है
मृत्यु अनिवार्य, मरो,' कौन वहाँ कहता है?
पाँव काँपे न रुकें हाथ, कभी इस रण में
मृत्यु से पूर्व मरण वीर नहीं सहता है
२. शब्दों से परे जहाँ एक और अर्थ है
व्यक्त जिसे करने में वाणी असमर्थ है
उँगली धर मौन की वहीं पर आ गया हूँ मैं
छिपने का आपका प्रयत्न और व्यर्थ है
३. होता नहीं, उर में उल्लास, कभी गाता मैं!
पीड़ा नहीं होती तो मिठास कहाँ पाता मैं!
भूलें न करता यदि, कविता बनती कैसे!
होता नहीं प्रेम तो अपूर्ण रह जाता मैं

कथानाशय यह है कि महाकवि गुलाब ने मुक्तक काव्य के इस लघु ग्रन्थ में चित्रों, रूपकों, फूल-नदी के जीवन प्रतीकों में गुंफित मानव-जीवन के उत्थान-पतन, सृष्टि के रचना-प्रलय आदि को सजाकर उससे निःसृत रसचषक प्रस्तुत किया है जो हिन्दी-गीतों के भाव-जगत् की मणि है।

जहाँ साहित्य समाज का दर्पण है, वहीं यह सरलता से निरूपित किया जा सकता है कि 'कविता' से लेकर 'शब्दों से परे' तक का साहित्य महाकवि की, बाल्यावस्था से लेकर अद्यतन, जीवन-झाँकी है, अनुभूति-प्याली है, दर्शन या रसज्ञ जितना चाहें दर्शन करें और जी भरकर पी लें। मुझे विश्वास है कि हिन्दी साहित्य-कोष में 'शब्दों से परे' ने एक अमूल्य निधि दी है।

प्रतापगढ़, २२ फरवरी, १९८१ डॉ. राजेश्वर सहाय त्रिपाठी
फाल्गुन कृष्ण ४, वि. २०३७ प्रधानमंत्री, उ. प्र. साहित्य सम्मलेन